International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 23-06-2026, Accepted: 24-07-2026, Published: 10-08-2026
Volume 8, Issue 3, 2026, Page No. 27-29

हरेला पर्व: पारम्परिक ज्ञान और आधुनिक पर्यावरण संरक्षण का समन्वय

डॉ. निधि उप्रेती
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, स्पर्श हिमालय विश्वविद्यालय, देहरादून, उत्तराखंड, भारत
DOI: https://doi.org/10.66856/ijrh.2026.8.3.8057

सारांश
भारतीय संस्कृति में प्रकृति को जीवन का आधार, आध्यात्मिक चेतना का केंद्र तथा सामाजिक व्यवस्था का अभिन्न अंग माना गया है। भारतीय लोकपर्व केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं हैं, बल्कि वे प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व, संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग तथा सामुदायिक उत्तरदायित्व के जीवंत उदाहरण भी हैं। उत्तराखण्ड का हरेला पर्व ऐसी ही समृद्ध लोकपरम्परा का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें कृषि, जैव–विविधता, जल संरक्षण, वृक्षारोपण तथा पर्यावरणीय नैतिकता का अद्भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है।
समकालीन विश्व में जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन, जैव–विविधता के क्षरण तथा पर्यावरणीय असंतुलन जैसी समस्याएँ वैश्विक चिंता का विषय हैं। संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रतिपादित सतत विकास लक्ष्य भी स्थानीय ज्ञान प्रणालियों तथा सामुदायिक सहभागिता को पर्यावरण संरक्षण का आधार मानते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में हरेला पर्व केवल सांस्कृतिक धरोहर नहीं, बल्कि पर्यावरण संरक्षण की एक व्यवहारिक एवं सतत जीवन–पद्धति के रूप में उभरता है।
प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य हरेला पर्व में निहित पारम्परिक ज्ञान प्रणाली का विश्लेषण करना तथा आधुनिक पर्यावरण संरक्षण के साथ उसके अंतर्सम्बन्धों का मूल्यांकन करना है। अध्ययन गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध–पद्धति पर आधारित है तथा इसमें सांस्कृतिक अध्ययन, पर्यावरणीय शोध, सरकारी दस्तावेजों एवं समकालीन अकादमिक साहित्य का समन्वित अध्ययन किया गया है। शोध से यह स्पष्ट होता है कि हरेला पर्व भारतीय पारम्परिक पर्यावरणीय ज्ञान का प्रभावी उदाहरण है, जो वर्तमान पर्यावरणीय संकटों के समाधान हेतु महत्त्वपूर्ण प्रेरणा प्रदान करता है।

मूल शब्दः हरेला, उत्तराखण्ड, पारम्परिक ज्ञान, पर्यावरण संरक्षण, लोकसंस्कृति, जैव–विविधता, सतत विकास, जलवायु परिवर्तन

प्रकृति और मानव का सम्बन्ध मानव सभ्यता जितना ही प्राचीन है। प्रारम्भिक समाजों ने प्रकृति को केवल भौतिक संसाधन नहीं माना, बल्कि उसे जीवनदाता, संरक्षक तथा सांस्कृतिक अस्तित्व का आधार समझा। भारतीय दार्शनिक परम्परा में पंचमहाभूतकृ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाशकृको समस्त सृष्टि का आधार माना गया है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में नदियों, पर्वतों, वृक्षों तथा वनस्पतियों की पूजा की परम्परा विकसित हुई।[3]
अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी को माता तथा मानव को उसका पुत्र कहा गया है —"माता भूमिः पुत्रोSहैं पृथिव्याः"—यह उद्घोष भारतीय पर्यावरणीय चिंतन का मूलाधार है।[4] यह विचार केवल धार्मिक आस्था नहीं, बल्कि प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की सामाजिक प्रतिबद्धता का भी द्योतक है।
उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक पहचान उसके पर्व–त्योहारों, लोकगीतों, लोकनृत्यों और प्रकृति–आधारित जीवन शैली में निहित है। हिमालयी समाज ने सदियों से प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग संतुलित ढंग से किया तथा उन्हें धार्मिक विश्वासों और सामाजिक परम्पराओं से जोड़कर संरक्षित रखा। इसी सांस्कृतिक परम्परा का प्रतिनिधि पर्व हरेला है।
श्हरेलाश शब्द संस्कृत के हरित से व्युत्पन्न माना जाता है, जिसका अर्थ हैकृहरियाली, नवजीवन और समृद्धि। यह पर्व मुख्यतः श्रावण संक्रान्ति के अवसर पर मनाया जाता है और वर्षा ऋतु के स्वागत, कृषि कार्यों के प्रारम्भ तथा प्रकृति के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का प्रतीक माना जाता है।[5]
हरेला पर्व की सबसे विशिष्ट परम्परा विभिन्न प्रकार के बीजों का सामूहिक रूप से बोना है। गेहूँ, जौ, धान, तिल, मक्का तथा अन्य स्थानीय फसलों के बीज मिट्टी के पात्र में बोए जाते हैं। लगभग नौ या दस दिनों के पश्चात अंकुरित पौधों को देवताओं को अर्पित किया जाता है तथा परिवार के वरिष्ठ सदस्य उन्हें आशीर्वादस्वरूप अन्य सदस्यों के कानों और सिर पर रखते हैं। यह प्रक्रिया केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि कृषि–जैव विविधता, बीज संरक्षण तथा प्रकृति के प्रति सम्मान का प्रतीक है।[6]
समकालीन संदर्भ में हरेला पर्व का महत्व और अधिक बढ़ गया है। जलवायु परिवर्तन के कारण हिमालयी क्षेत्र में अनियमित वर्षा, हिमनदों का तीव्र पिघलना, भूस्खलन, वनाग्नि तथा जैव–विविधता का क्षरण जैसी समस्याएँ लगातार बढ़ रही हैं। ऐसी स्थिति में स्थानीय ज्ञान प्रणालियाँ पर्यावरण संरक्षण के व्यवहारिक उपाय प्रस्तुत करती हैं। हरेला इन्हीं उपायों में से एक है, जो सामाजिक सहभागिता के माध्यम से पर्यावरणीय उत्तरदायित्व विकसित करता है।[7]

साहित्य समीक्षा

हरेला पर्व पर उपलब्ध साहित्य अपेक्षाकृत सीमित होने के बावजूद हाल के वर्षों में इस विषय पर अकादमिक शोध में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।
Pant (2025) ने अपने शोध Ritual as Resilience में हरेला को जलवायु अनुकूलन (Climate Resilience) तथा सामुदायिक पर्यावरणीय चेतना का प्रभावी माध्यम माना है। उनके अनुसार यह पर्व पारम्परिक कृषि ज्ञान, बीज संरक्षण तथा सामुदायिक सहभागिता को मजबूत बनाता है और स्थानीय समाज में पर्यावरणीय उत्तरदायित्व की भावना विकसित करता है।[8]
Chandola, Dwivedi एवं Mishra (2025) ने अपने अध्ययन में प्रतिपादित किया है कि हरेला कृषि–जैव विविधता के संरक्षण तथा हिमालयी सांस्कृतिक विरासत के पुनर्जीवन का प्रभावी माध्यम है। शोधकर्ताओं के अनुसार आधुनिक शिक्षा प्रणाली और स्थानीय सांस्कृतिक परम्पराओं के समन्वय से हरेला पर्यावरण संरक्षण के लिए एक प्रभावशाली सामाजिक अभियान बन सकता है।[9]

र्तेजवहप एवं सहयोगियों (2025) ने हरेला को धार्मिक अनुष्ठान से आगे बढ़कर एक पर्यावरणीय एवं कृषि–आधारित सांस्कृतिक मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया है। अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि हरेला की परम्पराएँ सामुदायिक वानिकी, वृक्षारोपण तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

यद्यपि इन अध्ययनों में हरेला के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण किया गया है, तथापि हिन्दी में ऐसा समग्र अध्ययन अपेक्षाकृत कम उपलब्ध है जिसमें पारम्परिक ज्ञान, पर्यावरणीय नैतिकता तथा आधुनिक पर्यावरण संरक्षण के अंतर्सम्बन्धों का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत किया गया हो। यही इस शोध का प्रमुख औचित्य है।

शोध–अंतर

उपलब्ध साहित्य के अध्ययन से निम्न शोध–अंतर स्पष्ट होते हैं—

1. हिन्दी भाषा में हरेला के पर्यावरणीय विमर्श पर विस्तृत अकादमिक अध्ययन सीमित हैं।
2. पारम्परिक ज्ञान प्रणाली एवं आधुनिक पर्यावरणीय नीतियों के समन्वय पर पर्याप्त शोध उपलब्ध नहीं है।
3. हरेला और सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) के अंतर्सम्बन्धों पर हिन्दी में गंभीर विश्लेषण का अभाव है।
4. हिमालयी पर्यावरणीय संकटों के संदर्भ में हरेला की समकालीन उपयोगिता पर व्यापक अध्ययन अपेक्षित है।

शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

हरेला पर्व की सांस्कृतिक एवं ऐतिहाष्ठभूसिक पृमि का अध्ययन करना।

हरेला में निहित पारम्परिक पर्यावरणीय ज्ञान का विश्लेषण करना।

आधुनिक पर्यावरण संरक्षण और हरेला के मध्य अंतर्सम्बन्धों का मूल्यांकन करना।

जलवायु परिवर्तन एवं सतत विकास के संदर्भ में हरेला की प्रासंगिकता का अध्ययन करना।

शोध–पद्धति

यह अध्ययन गुणात्मक (Qualitative) एवं विश्लेषणात्मक (Analytical) शोध–पद्धति पर आधारित है। अध्ययन में पुस्तकों, शोध–पत्रों, सरकारी रिपोर्टों, सांस्कृतिक अध्ययनों तथा पर्यावरणीय दस्तावेज़ों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य हरेला पर्व को केवल सांस्कृतिक आयोजन के रूप में नहीं, बल्कि एक पारम्परिक पर्यावरणीय ज्ञान प्रणाली के रूप में समझना है।

हरेला का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

हरेला उत्तराखण्ड के कुमाऊँ एवं गढ़वाल अंचलों का एक प्राचीन कृषि एवं प्रकृति–आधारित लोकपर्व है। यद्यपि इसकी उत्पत्ति के संबंध में कोई एक निश्चित ऐतिहासिक अभिलेख उपलब्ध नहीं है, तथापि लोकपरम्पराएँ, ऐतिहासिक विवरण तथा सांस्कृतिक अध्ययन यह संकेत करते हैं कि इसका विकास हिमालयी कृषि–जीवन और ऋतु–चक्र के साथ हुआ।

हरेला मुख्यतः श्रावण संक्रान्ति के अवसर पर मनाया जाता है। इस समय मानसून सक्रिय हो जाता है और कृषि कार्यों का प्रारम्भ होता है। पर्व से नौ अथवा दस दिन पूर्व परिवारों द्वारा मिट्टी से भरे बाँस या पत्तों के पात्र में गेहूँ, जौ, धान, मक्का, तिल, उड़द तथा अन्य स्थानीय बीज बोए जाते हैं। निर्धारित समय के पश्चात इन अंकुरित पौधों को देवताओं को समर्पित किया जाता है और परिवार के सदस्यों को शुभकामना एवं समृद्धि के प्रतीक के रूप में वितरित किया जाता है।

हरेला केवल कृषि पर्व नहीं है, बल्कि यह प्रकृति के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने की सांस्कृतिक परम्परा भी है। इस अवसर पर लोकगीत, मंगलगान, पारिवारिक अनुष्ठान तथा वृक्षारोपण जैसी गतिविधियाँ समाज को प्रकृति से भावनात्मक रूप से जोड़ती हैं। यही कारण है कि उत्तराखण्ड की लोकसंस्कृति में हरेला को जीवन, हरियाली तथा समृद्धि का पर्व माना जाता है।

हरेला में निहित पारम्परिक ज्ञान प्रणाली:

पारम्परिक ज्ञान (Traditional Knowledge) से आशय उस अनुभवजन्य ज्ञान से है जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी समुदायों द्वारा अर्जित एवं संरक्षित किया जाता है। संयुक्त राष्ट्र तथा UNESCO ने स्थानीय एवं पारम्परिक ज्ञान को जैव–विविधता संरक्षण और सतत विकास के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना है।[13]

हरेला इसी प्रकार की पारम्परिक ज्ञान प्रणाली का जीवंत उदाहरण है। इसके प्रमुख आयाम निम्नलिखित हैं—

(क) बीज संरक्षण की परम्परा

हरेला में अनेक प्रकार के स्थानीय बीजों का एक साथ बोया जाना केवल धार्मिक प्रतीक नहीं है। यह स्थानीय कृषि जैव–विविधता के संरक्षण की परम्परा है। इससे समुदाय विभिन्न फसलों की उपयोगिता तथा उनकी विविधता को बनाए रखता है। आधुनिक कृषि में संकर (Hybrid) बीजों के बढ़ते उपयोग के कारण अनेक स्थानीय प्रजातियाँ विलुप्ति के कगार पर पहुँच रही हैं। ऐसे समय में हरेला पारम्परिक बीजों के महत्व को पुनः स्थापित करता है।[4]

(ख) ऋतु–ज्ञान (Seasonal Knowledge)

हरेला स्थानीय समुदायों के मौसम संबंधी अनुभवों का भी प्रतिनिधित्व करता है। पर्व का समय वर्षा ऋतु की शुरुआत से जुड़ा है। यह किसानों को कृषि कार्यों की तैयारी, भूमि संरक्षण तथा जल प्रबंधन के प्रति सचेत करता है।

हिमालयी समाज में ऋतु–चक्र का यह अनुभव वैज्ञानिक मौसम पूर्वानुमान उपलब्ध होने से बहुत पहले विकसित हो चुका था। अतः हरेला को स्थानीय जलवायु ज्ञान (Indigenous Climate Knowledge) का भी प्रतीक माना जा सकता है।

(ग) सामुदायिक सहभागिता

हरेला परिवार और समुदाय दोनों को एक साथ जोड़ने वाला पर्व है। वृक्षारोपण, सामूहिक पूजा, लोकगीत तथा सामुदायिक आयोजन सामाजिक सहयोग की भावना को सुदृढ़ करते हैं। पर्यावरण संरक्षण में सामुदायिक भागीदारी को आज विश्व स्तर पर सर्वाधिक प्रभावी रणनीतियों में माना जाता है।[5]

कृषि, जैव–विविधता और पर्यावरण संरक्षण:

हरेला का कृषि से अत्यन्त घनिष्ठ संबंध है। कृषि केवल आर्थिक गतिविधि नहीं, बल्कि उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक पहचान का आधार रही है। पर्व के माध्यम से किसानों में यह विश्वास सुदृढ़ होता है कि समृद्ध कृषि स्वस्थ पर्यावरण पर निर्भर करती है।

Chandola, Dwivedi एवं Mishra (2025) के अनुसार हरेला कृषि–जैव विविधता के संरक्षण का प्रभावी सांस्कृतिक माध्यम है। स्थानीय बीजों का प्रयोग, विविध फसलों का सम्मान तथा सामुदायिक कृषि परम्पराएँ पर्यावरणीय स्थिरता को मजबूत बनाती हैं।[6]

आधुनिक वैज्ञानिक शोध भी यह स्वीकार करते हैं कि कृषि जैव–विविधता खाद्य सुरक्षा, जलवायु अनुकूलन तथा मृदा संरक्षण के लिए अत्यंत आवश्यक है। एकल फसल प्रणाली (Monoculture) की तुलना में बहुफसली कृषि प्राकृतिक आपदाओं

के प्रति अधिक अनुकूल होती है। हरेला इसी बहुविविध कृषि प्रणाली को सांस्कृतिक आधार प्रदान करता है।

वृक्षारोपण और वन संरक्षण की परम्परा

हरेला की सबसे चर्चित विशेषता वृक्षारोपण है। उत्तराखण्ड में अनेक दशकों से इस अवसर पर पौधे लगाने की परम्परा रही है। हाल के वर्षों में राज्य सरकार ने हरेला को बड़े स्तर के वृक्षारोपण अभियान से जोड़ दिया है।

वृक्षारोपण केवल प्रतीकात्मक गतिविधि नहीं है। इसका प्रत्यक्ष संबंध—

- कार्बन अवशोषण,
- जल संरक्षण,
- मृदा अपरदन नियंत्रण,
- जैव–विविधता संरक्षण,
- तथा स्थानीय जलवायु संतुलन से है।

हिमालयी क्षेत्रों में वन केवल लकड़ी के स्रोत नहीं, बल्कि जलस्रोतों, कृषि तथा आजीविका के आधार हैं। इसलिए हरेला का वृक्षारोपण कार्यक्रम पर्यावरणीय दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।[7]

आधुनिक पर्यावरण संरक्षण के साथ समन्वय:

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से पर्यावरण संरक्षण का वैश्विक विमर्श तीव्र हुआ। 1992 के रियो पृथ्वी सम्मेलन, जैव–विविधता अभिसमय (Convention on Biological Diversity) तथा संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों ने स्थानीय समुदायों की भूमिका को स्वीकार किया।

हरेला इन आधुनिक अवधारणाओं से कई स्तरों पर जुड़ता है—

स्थानीय जैव–विविधता का संरक्षण।
वृक्षारोपण के माध्यम से कार्बन संतुलन।
पारम्परिक कृषि ज्ञान का संरक्षण।
सामुदायिक सहभागिता।
पर्यावरणीय शिक्षा।

आज उत्तराखण्ड के अनेक विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में हरेला के अवसर पर वृक्षारोपण, पर्यावरण शपथ तथा जैव–विविधता जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि पारम्परिक लोकपर्व आधुनिक पर्यावरणीय अभियानों को सामाजिक आधार प्रदान कर सकते हैं।[8]

हरेला और जलवायु परिवर्तन रू समकालीन परिप्रेक्ष्य

इक्कीसवीं शताब्दी में जलवायु परिवर्तन (Climate Change) मानव सभ्यता के समक्ष सबसे बड़ी वैश्विक चुनौतियों में से एक है। हिमालयी क्षेत्र विशेष रूप से इसके प्रभावों के प्रति संवेदनशील है। तापमान में वृद्धि, अनियमित वर्षा, हिमनदों का तीव्र पिघलना, वनाग्नि, भूस्खलन तथा जलस्रोतों का सूखना उत्तराखण्ड की पारिस्थितिकी पर गहरा प्रभाव डाल रहे हैं।[9]

ऐसी परिस्थितियों में हरेला पर्व केवल सांस्कृतिक आयोजन नहीं, बल्कि स्थानीय समुदायों को प्रकृति के साथ पुनः जोड़ने का प्रभावी माध्यम बन सकता है। वृक्षारोपण, स्थानीय प्रजातियों का संरक्षण, सामुदायिक श्रम तथा प्राकृतिक संसाधनों के प्रति उत्तरदायित्व जैसे तत्व जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। यद्यपि यह कहना उचित नहीं होगा कि केवल लोकपर्व जलवायु परिवर्तन की समस्या का समाधान कर सकते हैं, किन्तु वे समाज में पर्यावरणीय व्यवहार (Environmental Behaviour) विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हरेला को केवल औपचारिक वृक्षारोपण तक सीमित न रखकर पौधों के संरक्षण, जलस्रोतों के पुनर्जीवन, स्थानीय बीजों के संवर्धन तथा पर्यावरण शिक्षा से जोड़ा जाए।

समकालीन चुनौतियाँ

हरेला की व्यापक सामाजिक स्वीकृति के बावजूद इसके समक्ष अनेक चुनौतियाँ उपस्थित हैं।

(क) औपचारिकता का बढ़ता स्वरूप

अनेक स्थानों पर हरेला सरकारी कार्यक्रमों तक सीमित होकर रह गया है। वृक्षारोपण के बाद पौधों की देखभाल और संरक्षण पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया जाता। इससे अभियान का दीर्घकालिक प्रभाव सीमित हो जाता है।

(ख) पारम्परिक ज्ञान का क्षरण

तेजी से बढ़ते शहरीकरण, पलायन तथा आधुनिक जीवनशैली के कारण नई पीढ़ी का स्थानीय कृषि, लोकगीतों, पारम्परिक बीजों और सांस्कृतिक अनुष्ठानों से जुड़ाव कम हो रहा है। परिणामस्वरूप पारम्परिक पर्यावरणीय ज्ञान धीरे–धीरे लुप्त होने की स्थिति में है।

(ग) जैव–विविधता पर संकट

व्यावसायिक कृषि, एकल फसल प्रणाली (Monoculture) तथा बाहरी बीजों पर निर्भरता के कारण स्थानीय कृषि जैव–विविधता प्रभावित हुई है। हरेला जैसी परम्पराएँ इस विविधता के संरक्षण का संदेश देती हैं, किन्तु इनके प्रभावी क्रियान्वयन की आवश्यकता है।

(घ) पर्यावरण शिक्षा का अभाव

विद्यालयों एवं उच्च शिक्षण संस्थानों में हरेला को अक्सर सांस्कृतिक कार्यक्रम के रूप में मनाया जाता है, जबकि इसे पर्यावरण शिक्षा, स्थानीय जैव–विविधता और जलवायु परिवर्तन से जोड़कर पढ़ाया जाना चाहिए।

आलोचनात्मक विश्लेषण

हरेला का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि यह पर्यावरण संरक्षण को केवल वैज्ञानिक विषय नहीं मानता, बल्कि उसे सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक उत्तरदायित्व के रूप में स्थापित करता है। आधुनिक पर्यावरणीय नीतियाँ जहाँ वैज्ञानिक अनुसंधान और तकनीकी समाधानों पर आधारित हैं, वहीं हरेला जैसे लोकपर्व समाज के व्यवहार और जीवनशैली में पर्यावरणीय मूल्यों को स्थापित करते हैं।

फिर भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि किसी लोकपरम्परा को आदर्शीकृत (Romanticize) करना उचित नहीं होगा। आधुनिक पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान केवल सांस्कृतिक परम्पराओं से संभव नहीं है। इसके लिए वैज्ञानिक अनुसंधान, प्रभावी सार्वजनिक नीति, स्थानीय समुदायों की भागीदारी तथा पर्यावरणीय कानूनों का समन्वित क्रियान्वयन आवश्यक है। अतः हरेला को आधुनिक पर्यावरण विज्ञान का विकल्प नहीं, बल्कि उसका सांस्कृतिक सहयोगी (Complementary Framework) समझा जाना चाहिए।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हरेला पर्व उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक विरासत का ऐसा महत्त्वपूर्ण अंग है, जिसमें पारम्परिक ज्ञान, कृषि संस्कृति, जैव–विविधता संरक्षण तथा पर्यावरणीय नैतिकता का समन्वित स्वरूप दिखाई देता है। यह पर्व प्रकृति

और मानव के सह–अस्तित्व की भारतीय अवधारणा को व्यवहारिक रूप प्रदान करता है।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि हरेला में निहित वृक्षारोपण, बीज संरक्षण, सामुदायिक सहभागिता तथा प्राकृतिक संसाधनों के प्रति सम्मान जैसे तत्व आधुनिक पर्यावरण संरक्षण की अवधारणाओं के साथ सामंजस्य रखते हैं। संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्य, जैव–विविधता संरक्षण तथा जलवायु परिवर्तन अनुकूलन जैसी वैश्विक अवधारणाएँ स्थानीय समुदायों की सक्रिय भूमिका पर बल देती हैं, और हरेला इसी दिशा में एक प्रभावी सांस्कृतिक मॉडल प्रस्तुत करता है।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि हरेला को केवल धार्मिक या सांस्कृतिक उत्सव न मानकर पर्यावरणीय शिक्षा, सामुदायिक संसाधन प्रबंधन तथा सतत विकास की स्थानीय रणनीतियों के साथ जोड़ा जाए। इससे यह पर्व सांस्कृतिक संरक्षण के साथ–साथ पर्यावरणीय उत्तरदायित्व को भी सुदृढ़ करेगा।

शोध के प्रमुख निष्कर्ष:

1. हरेला उत्तराखण्ड की पारम्परिक पर्यावरणीय ज्ञान प्रणाली का प्रतिनिधि लोकपर्व है।
2. पर्व में बीज संरक्षण, कृषि–जैव विविधता तथा वृक्षारोपण की सशक्त परम्परा निहित है।
3. लोकपरम्पराएँ पर्यावरणीय नैतिकता के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।
4. हरेला आधुनिक सतत विकास लक्ष्यों के अनेक आयामों के अनुरूप है।
5. पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में स्थानीय समुदायों की भागीदारी को सुदृढ़ करने के लिए हरेला प्रभावी सांस्कृतिक मंच प्रदान करता है।

सुझाव:

हरेला को विद्यालय एवं विश्वविद्यालय के पर्यावरण अध्ययन पाठ्यक्रम से जोड़ा जाए।

प्रत्येक वृक्षारोपण अभियान के साथ पौधों की तीन वर्ष तक निगरानी एवं संरक्षण सुनिश्चित किया जाए।

स्थानीय बीजों एवं पारम्परिक कृषि ज्ञान का वैज्ञानिक दस्तावेजीकरण किया जाए।

हरेला के अवसर पर केवल वृक्षारोपण नहीं, बल्कि जलस्रोत संरक्षण, जैव–विविधता सर्वेक्षण एवं पर्यावरण संवाद भी आयोजित किए जाएँ।

विश्वविद्यालयों में हिमालयी पारम्परिक ज्ञान और पर्यावरण संरक्षण पर अंतःविषयक (Interdisciplinary) शोध को प्रोत्साहित किया जाए।

संदर्भ

1. Harshit Pant, Ritual as Resilience: Celebration of Harela Festival, LEISA India, June 2025.
2. United Nations, Transforming Our World: The 2030 Agenda for Sustainable Development (New York: United Nations, 2015).
3. कपिल तिवारी, भारतीय लोकसंस्कृति और पर्यावरण (भोपाल: आदिवासी लोककला अकादमी, विभिन्न संस्करण)।
4. अथर्ववेद, काण्ड 12, पृथ्वी सूक्त, मन्त्र 12.1.12.
5. बद्रीदत्त पाण्डे, कुमाऊँ का इतिहास (अल्मोड़ा: श्याम प्रकाशन, विभिन्न संस्करण)।
6. Pawanika Chandola, Rakesh Dwivedi, and Surendra Kumar Mishra, "Rejuvenation of Uttarakhand's 'Harela' Festival: A New Impetus to Socio-cultural Tradition and Agrobiodiversity Conservation in Himalaya," Journal of Cultural Heritage Management and Sustainable Development (2025).
7. IPCC, Climate Change 2023: Synthesis Report (Geneva: IPCC, 2023).
8. Harshit Pant, Ritual as Resilience: Celebration of Harela Festival, LEISA India, June 2025.
9. Chandola, Dwivedi and Mishra, "Rejuvenation of Uttarakhand's 'Harela' Festival," 2025.
10. Priyanshi Rastogi *et al*., "Harela Festival of Uttarakhand: A Cultural, Agricultural and Environmental Beacon," Goya Journal 18, no. 10 (2025): 177–187.
11. 11. बद्रीदत्त पाण्डे, कुमाऊँ का इतिहास (अल्मोड़ारू श्याम प्रकाशन, विभिन्न संस्करण)।
12. Harshit Pant, "Ritual as Resilience: Celebration of Harela Festival," LEISA India, June 2025.
13. UNESCO, Local and Indigenous Knowledge Systems, Paris, 2022.
14. Pawanika Chandola, Rakesh Dwivedi, and Surendra Kumar Mishra, "Rejuvenation of Uttarakhand's 'Harela' Festival," Journal of Cultural Heritage Management and Sustainable Development (2025).
15. Elinor Ostrom, Governing the Commons (Cambridge: Cambridge University Press, 1990).
16. Chandola, Dwivedi and Mishra, "Rejuvenation of Uttarakhand's 'Harela' Festival," 2025.
17. Forest Survey of India, India State of Forest Report 2023 (Dehradun: FSI, 2024).
18. United Nations, Transforming Our World: The 2030 Agenda for Sustainable Development (New York: United Nations, 2015).
19. IPCC, Climate Change 2023: Synthesis Report (Geneva: Intergovernmental Panel on Climate Change, 2023).
20. United Nations Environment Programme (UNEP), Making Peace with Nature (Nairobi: UNEP, 2021).
21. UNESCO, Local and Indigenous Knowledge Systems, Paris, 2022.
22. Elinor Ostrom, Governing the Commons: The Evolution of Institutions for Collective Action (Cambridge: Cambridge University Press, 1990).